5 तुलसीदास

दोहावली

1. **राम बाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर।**
   ध्यान सकल कल्यानमय सुरतरु तुलसी तोर॥

शब्दार्थ — **बाम** = बायीं। **सुरतरु** = कल्प-वृक्ष मनमाना फल देने वाला।

संदर्भ एवं प्रसंग — प्रस्तुत दोहा तुलसीकृत 'दोहावली' से उद्धृत है, जिसमें कवि ने सीता राम की युगल छवि का ध्यान किया है।

व्याख्या — तुलसी कहते हैं कि श्रीरामजी की बायीं ओर जानकीजी हैं और उनके (श्रीराम के) दायीं ओर श्री लक्ष्मणजी हैं। यह ध्यान संपूर्ण रूप से कल्याणकारी हैं। तुलसी यह भी स्वीकार करते हैं कि हे तुलसी! तेरे लिए यह ध्यान कल्प-वृक्ष के समान है, मनमाना फलदायक है।

विशेष — (1) भक्त हृदय की भक्ति भावना फूटी है।

(2) 'सुरतरु' ये रुपक है।

(3) सुरतरु-कल्पवृक्ष, जिसे संपूर्ण कामना की पूर्ति करने वाला माना जाता है।

2. **दंपति रस रसना दसन परिजन बदन सुगेह।**
   तुलसी हर हित बरन सिसु संपति सहज सनेह॥

शब्दार्थ — **दंपति** = पति-पत्नी। **दसन** = दाँत। **परिजन** = परिवारीजन। **बदन** = मुख।

प्रसंग — तुलसीकृत 'दोहावली' के इस दोहे में सच्ची गृहस्थी का चित्र प्रस्तुत किया गया है। यह स्पष्ट करते हुए कि एक परमार्थ साधक की गृहस्थी का यही स्वरूप होना चाहिए।

व्याख्या — तुलसी कहते हैं कि रस और रसना (जीभ) दोनों पति-पत्नी हैं। समस्त रसों का भोग रसना के माध्यम से ही होता है और रामनाम रूपी रस तो रसना आत्मविभोर ही हो उठती है। तुलसी कहते हैं कि यह मुख ही संपूर्ण परिवार है। जिसमें दाँत कुटुम्बी हैं, मुख सुन्दर घर है। श्री शंकर के प्रिय 'रा' और 'म' - ये दोनों अक्षर दो मनोहर बालक हैं और यहाँ सहज स्नेह ही सम्पत्ति है।

यहाँ का प्रत्येक तत्त्व परोपकारी हैं, रसना भी मात्र अपने लिए भोग नहीं करती, वह शरीर पोषण का साधन है, यही स्थिति दाँत, मुख आदि की है। तुलसी की कामना है कि सद्गृहस्थ का परिवार भी ऐसा ही होना चाहिए।

विशेष — (1) भक्त कवि तो एक ही रस मानता है और वह है राम रस।

(2) पूरे परिवार की व्यंजना में सांगरूपक है।

(3) राम भक्ति और परमार्थ दोनों के महत्त्व की व्यंजना की गयी है।

3. **बरसा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास।**
   रामनाम बर बरन जुग सावन भादव मास॥

शब्दार्थ — **सालि** = धान। **जुग** = दोनों।

प्रसंग — वर्षा का आधार लेकर तुलसी कहते हैं कि भक्ति पूर्वक श्रीराम जी का जप करने से भक्तों को अपार आनंद प्राप्त होता है।

व्याख्या — तुलसी कहते हैं कि श्री रघुनाथजी की भक्ति वर्षा ऋतु के समान परमानन्ददायिनी है, क्योंकि यही प्रेमा-भक्ति है और प्रेमा-भक्ति सहज कल्याणकारी होती है। जो प्रेमीजन है, भक्तजन है, वे धान की फसल के समान हैं, जो वर्षा ऋतु में ही लहलहाती हैं। 'रा' और 'म' रामनाम के दो सुन्दर अक्षर सावन-भादों के समान वर्षा के मास हैं। जिस प्रकार वर्षा काल के दो महीनों में (सावन-भादों में) धान लहलहा उठता है, उसी प्रकार भक्ति की वर्षा से दास (भक्ति) लहलहा उठता है, अत्यधिक प्रसन्न हो उठता है।

विशेष — (1) सच्चे भक्त की स्थिति व्यंजित है।

(2) रूपक अलंकार है।

4. **तुलसी जौंपे राम सों नाहिन सहज सनेह।**
   मूँड़ मुड़ायो बादिहीं भाँड़ भयो तजि गेह॥

शब्दार्थ — **नाहिन** = नहीं। **बादिहीं** = व्यर्थ ही। **भाँड़** = स्वाँग रचने वाला।

प्रसंग — 'दोहावली' के इस दोहे में तुलसी यह स्पष्ट करते हैं कि यदि मन में सच्चा वैराग्य नहीं है तो संन्यास ग्रहण करना व्यर्थ है।

व्याख्या — तुलसी कहते हैं कि यदि मन में श्रीराम प्रभु के प्रति स्वाभाविक सच्चा प्रेम नहीं है, तो संन्यास ग्रहण करने से भी कल्याण नहीं होने वाला है। फिर क्यों वृथा ही मूँड़ मुड़ाकर घर छोड़कर साधु का स्वाँग रचते हो और वैराग्य का ढोंग पीटते हो?

विशेष — संन्यासी (जो सच्चा नहीं होता) सभी भक्त कवियों ने टिप्पणियाँ की है। कबीर कहते हैं :-

केसन कहा बिगारिया जो मूँड़े सौ बार।
मत रो काहेन मूँड़ते जा मैं विसय विकार॥

(2) ढोंगी को भक्ति प्राप्त नहीं होती।

5. **कै तोहि लागहिं राम प्रिय कै तू प्रभु प्रिय होहि।**
   दुइ में रुचै जो सुगम सो कीबे तुलसी तोहि॥

शब्दार्थ — **कै** = या तो। **तोहि** = तुम्हें। **कीबे** = करता।

प्रसंग — यहाँ तुलसी 'सब तजि राम भज' की महत्ता स्पष्ट कर रहे हैं, अर्थात् हे साधक! तू सर्वांग भाव से श्रीरामजी के चरणों में लीन हो जा। तुलसी एक ही पथ के पथिक हैं, राम के चरणों में पूर्ण समर्पण यहाँ भी उसी की महत्ता व्यंजित है।

व्याख्या — तुलसी कहते हैं कि हे भक्त-साधक तू अपनी भक्ति और साधना को इतना उठा ले कि तुझे राम (केवल राम ही) अत्यंत प्रिय लगने लगे या तू श्रीराम का प्रिय बन जा। दोनों में से जो भी तुझे सुगम लगे और प्रिय लगे वही तुझे करना चाहिए।

तुलसी का मत है कि तू सब कुछ छोड़कर श्रीरामजी की शरण में चला जा, उन्हें ही अपना एक मात्र आधार मान ले, सब कुछ उन्हीं पर छोड़ दे तो दोनों ही स्थितियाँ स्वत: उत्पन्न हो जाएँगी - राम भी तुझको परम प्रिय प्रतीत होने लगेगा और तू भी राम का परम प्यारा हो जाएगा।

विशेष — प्रेम और भक्ति में एकनिष्ठ अनन्यता की महिमा सर्वत्र व्याप्त है। तुलसी ने एकनिष्ठ अनन्यता के विषय में कहा है :-

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घनस्याम हित चातक तुलसीदास॥

(2) अनुप्रास अलंकार है, संदेह अलंकार।

6. **बिनु गुर होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु।**
गावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु॥

शब्दार्थ — **बिराग** = वैराग्य। **लहिअ** = लेना, प्राप्त करना।

प्रसंग — यहाँ तुलसी ज्ञान, वैराग्य को महत्त्वपूर्ण तो मानते हैं, पर वे भक्ति को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

व्याख्या — तुलसी कहते हैं कि वेदपुराणों की स्पष्ट धारणा है कि बिना गुरु के ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता है, साथ ही वैराग्य के अभाव में भी ज्ञान की प्राप्ति सहज-संभव नहीं है। पर वेदपुराण यह भी गाते हैं कि श्रीहरि की भक्ति के बिना कभी सच्चे सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती।

विशेष — (1) तुलसी भक्ति-पथ को ही श्रेयस्कर मानते हैं।

(2) अनुप्रास अलंकार है।

7. **ब्यापि रहेउ संसार महुँ माया कटक प्रचंड।**
सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाषंड॥

शब्दार्थ — **ब्यापि** = व्याप्त। **कटक** = सेना। **प्रचंड** = भीषण।

प्रसंग — यहाँ तुलसी माया-मोह तथा उसकी प्रचंड सेना का उल्लेख कर रहे हैं।

व्याख्या — तुलसी कहते हैं कि सारे संसार में माया की प्रचंड (भीषण) सेना व्याप्त है, फैल रही है। इस सेना के सेनापति - काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और मत्सर हैं तथा

दम्भ, कपट, पाखण्ड उसके योद्धा हैं, जिनके आधार पर माया ने सारे संसार पर अधिकार कर रखा है।

विशेष — (1) माया की प्रबल और सर्वव्यापक शक्ति की ओर संकेत किया गया है।

(2) यहाँ यह भी संकेत है कि इनसे छुटकारा पाना सहज नहीं है।

(3) मात्र भक्ति ही ऐसा साधन है जिसके आश्रय में जाने पर माया नहीं सताती क्योंकि 'माया' और 'भक्ति' दोनों ही स्त्री स्वरूपा है; और स्त्री के रूप पर स्त्री मोहित नहीं होती।

मोहिन नारि नारि के रूपा।
पन्नगारी यह रीति अनूपा॥

8. **तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।**
मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ॥

शब्दार्थ — **प्रबल** = बलवान। **खल** = दुष्ट। **निमिष** = क्षण। **छोभ** = व्याकुलता।

प्रसंग — 'दोहावली' के इस दोहे में तुलसी ने कामादि की बलशाली शक्ति का उल्लेख करते हुए उनके प्रभाव की भी व्यंजना की है।

व्याख्या — तुलसीदासजी कहते हैं कि हे तात (हे सज्जनों)! इस संसार में तीन तरह के दुष्ट बहुत ही बलवान हैं और इनसे कोई भी नहीं बच सकता। ये तीन दुष्ट काम वासना, क्रोध और लोभ (लालच) है। जो ऋषि-मुनि ज्ञानी हैं, वे ही ज्ञान के बल पर इनसे बचने की क्षमता रखते हैं और भटकने वाला इन दुष्टों का शिकार हो जाता है।

विशेष — (1) कामादि माया सेना के सेनानायक है, ये साधारण व्यक्तियों की तो बात ही क्या है, परम ज्ञानियों के मन में भी क्षोभ उत्पन्न कर देते हैं।

(2) तुलसी की यही मान्यता है कि माया के बंधन से छुटकारा तप, ज्ञान से नहीं होता, वह तो भक्ति और प्रभु कृपा से ही जीती जा सकती है।

(3) **अनुप्रास** — 'तात-तीनि', 'काम-क्रोध', 'मुनि-मन'।

9. **रटत रटत रसना लटी तृषा सूखि गे अंग।**
तुलसी चातक प्रेम को नित नूतन रुचि रंग॥

शब्दार्थ — **रटत** = बार-बार उच्चारण। **रसना** = जीभ। **लटी** = लट गयी, कमजोर हो गयी। **तृषा** = प्यास।

प्रसंग — तुलसी के सम्मुख एकनिष्ठ अनन्य प्रेम का आदर्श चातक ही है, उसके प्रेम के रंग और उसके प्रेम की महत्ता का उल्लेख यहाँ तुलसी ने किया है।

व्याख्या — चातक का जीवनाधार और प्रेमाधार मेघ ही है, वह उसका नाम रटते-रटते अपनी जीभ भी सूखा देता है, घिसा देता है, फिर भी उसकी रट नहीं छुटती। वह तो

बादल से कुछ बूँद पानी ही चाहता है, पर वह यह थोड़ा सा जल भी नहीं दे पाता और इस कारण प्यास के मारे उसके सब अंग भी सूख जाते हैं। यह सब होने पर भी तुलसी कहते हैं कि चातक के प्रेम का रंग नित्य नया बढ़ता ही जाता है और अधिक सुन्दर होता जाता है।

विशेष — (1) कवि समय के आधार पर चातक स्वाति नक्षत्र का जल ही पीता है और वह भी धरती पर गिरा जल नहीं। चोंच खोलकर ऊपर ही ऊपर बादल से गिरती हुई बूँद ही पीता है। बादल उस पर कृपा नहीं करता, उलटे उसको सताता है, उसके प्रति उदासीन है, पर चातक का प्रेम नित बढ़ता ही जाता है। यह है एकनिष्ठ अनन्य विषम प्रेम का आदर्श।

(2) दोहावली में चातक प्रसंग पर तुलसी ने कई दोहे लिखे हैं, शायद वही उनका प्रेमादर्श है।

(3) चातक की महत्ता अनन्यता एकनिष्ठता व्यंजित है।

(4) **अलंकार** — (1) अनुप्रास रटत रटत रसना।

(2) **रूपक** — प्रेम के रंग में रूपक की व्यंजना है।

10. **पबि पाहन दामिनि गरज झरि झकोर खरि खीझि।**
रोष न प्रीतम दोष लखि तुलसी रागहि रीझि॥

शब्दार्थ — **पबि** = ओले। **पाहन** = पहाड़। **दामिनि** = बिजली। **रोष** = क्रोध। **रागहि** = प्रेम। **रीझि** = प्रसन्न होना।

प्रसंग — 'दोहावली' के इस दोहे में भी तुलसी ने चातक के अनन्य प्रेम की व्यंजना की है।

व्याख्या — चातक तो बेचारा बादल को ही रटता रहता है पर बादल वज्र गिराकर ओले बरसाकर, बिजली चमकाकर कड़क-कड़ककर वर्षा की झड़ी लगाकर और आँधी के भीषण झकोरे चलाकर अपना बड़ा भारी रोष प्रकट करता है, पर चातक पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वह अपने प्रियतम का दोष देखकर क्रोध नहीं करता। वह उसमें दोष भी नहीं देखता अपितु इसमें भी वह अपने प्रियतम मेघ का अपने प्रति अनुराग ही देखता है और उस पर रीझ भी जाता है।

विशेष — (1) पद संख्या 9 के समान।

(2) **अलंकार** — (1) 'पबि-पाहन', 'झरि-झकोर', 'खरि-खीझ' में अनुप्रास।

11. **कुदिन हितू सो हित सुदिन हित अनहित किन होइ।**
ससि छबि हर रबि सदन तउ मित्र कहत सब कोइ॥

शब्दार्थ — **कुदिन** = बुरे दिन। **हितू** = हित करने वाला। **ससि** = चन्द्रमा।

प्रसंग — दोहावली के इस दोहे में मित्र धर्म का बखान किया गया है कि सच्चे

मित्र की क्या विशेषता होती है।

व्याख्या — सुख के दिनों में चाहे कोई मित्र या शत्रु कुछ भी क्यों न हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है, यह कोई महत्त्व की बात नहीं है, पर सच्चा मित्र उसे ही माना जा सकता है जो बुरे दिनों-विपत्तिकाल में भी प्रेम करता है। सूर्य अपने घर में अमावस्या के दिन चन्द्रमा की शोभा को हरण कर लेता है फिर भी उसको सब 'मित्र' ही कहते हैं क्योंकि वह विपत्तिकाल में चन्द्रमा को अपनी किरणें प्रदान करके उसे आलोकित करता है, उसकी विपत्तिकाल में भलाई ही करता है।

विशेष — (1) यहाँ यही व्यंजित किया है कि विपत्ति में जो साथ दे वही सच्चा मित्र होता है।

(2) रहीम ने भी कहा है कि विपत्ति कसौटी जे कसे वे ही साँचे मीत।

(3) मित्र में श्लेष है, 'मित्र' सूर्य को भी कहा जाता है।

(4) **अलंकार** — (1) 'हितू-हित' में अनुप्रास।

12. **हित पुनीत सब स्वारथहिं अरि असुद्ध बिनु चाड़।**
निज मुख मानिक सम दसन भूमि परे ते हाड़॥

शब्दार्थ — **पुनीत** = पवित्र। **अरि** = शत्रु। **निज** = अपना। **सम** = समान। **दसन** = दाँत।

प्रसंग — दोहावली (तुलसीकृत) के इस दोहा में यह संकेत किया गया है कि किसी व्यक्ति या पदार्थ की श्रेष्ठता का आधार स्वार्थ ही है।

व्याख्या — तुलसी कहते हैं कि जब तक स्वार्थ है तभी तक सभी वस्तुएँ पवित्र और हितकारी प्रतीत होती है। जब स्वार्थ समाप्त हो जाता है या उनकी चाह कम हो जाती है तो वही वस्तुएँ जो स्वार्थ के समय पवित्र और हितकारी जान पड़ती थीं, अपवित्र और शत्रु के समान प्रतीत होने लगती है। उदाहरण देते हुए तुलसी अपने कथन को स्पष्ट करते हैं कि जब तक दाँत मुख में रहते हैं, तब तक वे माणिक के समान मूल्यवान होते हैं, परंतु वही दाँत जब टूटकर भूमि पर गिर पड़ते हैं तब वे हाड़ कहलाते हैं, अस्पृश्य तक हो जाते हैं।

विशेष — (1) संसार का सारा काम स्वार्थ पर ही आधारित है।

(2) वस्तु का मूल्य स्वार्थ पर ही आधारित है।

(3) **अलंकार** — (1) अनुप्रास 'सब-स्वारथहिं', 'अरि-असुद्ध'।

(2) उपमा 'मानिक सम' में।

13. **माखी काक उलूक बक दादुर से भए लोग।**
भले ते सुक पिक मोरसे कोउ न प्रेम पथ जोग॥

शब्दार्थ — **माखी** = मक्खी। **काक** = कौवा। **बक** = बगुला। **दादुर** = मेढ़क।

सुक = तोता। **पिक** = कोयल।

प्रसंग — प्रेम का पंथ बड़ा विलक्षण होता है, उस पर चलना सहज नहीं होता और उस पर चलने वाले होते भी बिरले हैं, यही तथ्य यहाँ व्यंजित है।

व्याख्या — तुलसी कहते हैं कि संसार में अधिकांश लोग तो मक्खी, कौए, उल्लू, बगुले और मेढ़क के सदृश होते हैं जिनका कार्य अकारण हानि करने वाला, पर निन्दारूपी मल भक्षण करने वाला (काक) भगवान् की ओर से आँख मूँदे रहने वाला (उल्लू) ऊपर से सुन्दर दीखने वाला और भीतर से कुटिल होता है। (बर) कुछ दादुर के समान व्यर्थ बर्बादी भी हो गये हैं। इनके साथ ही कुछ भले लोग भी हमारे सामने हैं, वे हैं - तोता, कोयल और मोर के समान स्वभाव और रूप रखने वाले, पर उनका भी अन्त:करण पवित्र नहीं होता। तोते के समान व्यक्ति बाहर से बड़े मधुर दीखते हैं पर पल में प्रेम तोड़कर भाग जाते हैं। कोयल के समान जो हैं वे अपनी मीठी बोली से तो सबको रस सिक्त कर देते हैं, परंतु छली-कपटी-स्वार्थी होते हैं (कौए के अंडे घोंसले से गिराकर अपने प्रस्थापित कर देते हैं)। मोर के समान परम सुन्दर दीखने वाले व्यक्ति भी भीतर से परम कठोर होते हैं। इस प्रकार इनमें से कोई भी ऐसी सामर्थ्य नहीं रखता जो प्रेम-पथ पर चल सके।

विशेष — (1) प्रेम मार्ग पर वही चल सकता है, जिसका हृदय निश्चल और निष्कपट हो। घनानंद ने कहा है :-

जहाँ साँचे चलें तजि आपनवौ,
झझकें कपटी जे निसांक नहीं।

(2) तुलसी ने यहाँ उन व्यक्तियों के अन्त:करण की स्थिति भी व्यंजित की है, जो बाहर से बड़े मधुर लगते हुए भी भीतर से कुटिल होते हैं।

14. उत्तम मध्यम नीच गति पाहन सिकता पानि।
प्रीति परिच्छा तिहुन की बैर बितिक्रम जानि॥

शब्दार्थ — **पाहन** = पत्थर। **सिकता** = रेत। **बितिक्रम** = विपरीत, उलटी।

प्रसंग — तुलसी 'दोहावली' के इस दोहे में 'प्रेम' और 'बैर' की तीन श्रेणियाँ बताते हुए कि उत्तम पुरुष की प्रीति ही स्थायी होती है।

व्याख्या — प्रीति की तीन श्रेणियाँ होती हैं - उत्तम, मध्यम और नीच। इनकी स्थिति भी इसी प्रकार की होती है, उत्तम प्रीति या उत्तम पुरुष की प्रीति पत्थर की लकीर के समान अमिट होती है, मध्यम प्रीति या मध्यम पुरुष की प्रीति बालू की रेखा के समान होती है, जिसका आधार हवा पर आधारित है, हवा लगते ही (दूसरी) वह मिट जाती है पर नीच की प्रीति तो जल रेखा के समान है, जिसका कोई अस्तित्व है ही नहीं, क्योंकि वह तो साथ ही साथ मिटती चली जाती है, उसी प्रकार नीच की प्रीति तत्काल नष्ट हो जाती है।

इसके विपरीत बैर की स्थिति है, उत्तम पुरुष का बैर जल की लकीर के समान तत्काल नष्ट होने वाला है। मध्यम व्यक्ति का बैर बालू की रेखा के समान कुछ समय तक स्थिर रहने वाला है और नीच का बैर पत्थर की लकीर के समान चिरस्थायी होता है।

विशेष — (1) प्रीति और बैर की तीन श्रेणियाँ बतायी गयी हैं।

(2) दृष्टान्त बड़े ही प्रभावी है।

(3) एक ही दृष्टान्त प्रीति और बैर में प्रयोग करके तुलसी ने अपने कला चातुर्य का परिचय दिया है।

(4) **अलंकार**—(1) अनुप्रास 'पाहन-पानि', 'प्रीति-परिच्छा', 'बैर-बितिक्रम'।

(2) पत्थर की लकीर, बालू की लकीर, पानी की लकीर में उपमा।

15. पुन्य प्रीति पति प्रापतिउ परमारथ पथ पाँच।
लहहिं सुजन परिहरहि खल सुनहु सिखावन साँच॥

शब्दार्थ — **पति** = प्रतिष्ठा। **लहहिं** = ग्रहण करना। **खल** = दुष्ट।

प्रसंग — तुलसी की 'दोहावली' के इस दोहे में सज्जन और दुर्जन के स्वभाव का अन्तर स्पष्ट किया गया है, विचित्रता यह है कि जिसे सज्जन परित्याग कर देते हैं, उसे दुष्ट लोग ग्रहण करते हैं और जिसे दुष्ट लोग त्याज्य समझते हैं सज्जन उसे ग्राह्य मानते हैं।

व्याख्या — तुलसी कहते हैं कि पुण्य, प्रेम, प्रतिष्ठा और लौकिक लाभ तथा परमार्थ पथ - इन पाँचों को सज्जनगण ग्रहण करते हैं पर दुष्ट व्यक्ति इनका परित्याग कर देते हैं। यही सच्ची शिक्षा है, इसको ध्यान देकर सुनो।

विशेष — (1) सज्जन और दुर्जन की प्रवृत्ति की चर्चा की गयी है।

(2) **अलंकार** — (1) अनुप्रास - पुण्य, प्रीति, पति, प्रापतिउ, परमारथ, पथ पाँच में।

16. नीच निरादरहीं सुखद आदर सुखद बिसाल।
कदरी बदरी बिटप गति पेखहु पनस रसाल॥

शब्दार्थ — **निरादरहीं** = निरादर करना। **कदरी** = केला। **बदरी** = बेर।

प्रसंग — तुलसी की 'दोहावली' के प्रस्तुत दोहे में यह संकेत किया गया है कि प्रकृति के अनुसार गुण-कर्म में भिन्नता होती है। अत: उसी के आधार पर व्यवहार करना उचित रहता है।

व्याख्या — तुलसी कहते हैं कि नीच लोग निरादर करने से और बड़े लोग आदर करने से सुखी होते हैं। यह तथ्य इस प्रकार समझ में आ सकता है कि केले, बेर तथा कटहल और आम की प्रकृति अलग-अलग होती है। केला और बेर काटे जाने पर अधिक फल देते हैं, परन्तु कटहल और आम सींचने और सेवा करने पर ही फल देते हैं।

विशेष — (1) सज्जन और दुर्जन की प्रवृत्ति और प्रकृति अलग-अलग होती है।

(2) तुलसी की मान्यता है, उसी प्रकार का व्यवहार हमें व्यक्ति से करना चाहिए.

जिस प्रकार की उसकी प्रवृत्ति हो।

(3) **अलंकार** — (1) अनुप्रास 'नीच-निरादरहीं' 'बदरी बिरप', 'पेख पनस' में।

(2) दृष्टान्त - बदरी, बेर आदि में।

17. तुलसी भलो सुसंग तें पोच कुसंगति सोइ।
नाउ किंनरी तीर असि लोह बिलोकहु लोइ॥

शब्दार्थ — पोच = बुरा, निर्बल। **किंनरी** = मधुर संगीत सुनाने वाला। **असि** तलवार। **लोह** = लोहा। **बिलोकहु** = देखना।

प्रसंग — तुलसी की 'दोहावली' के इस दोहे में संगत का प्रभाव व्यंजित है। तुलसी कहते हैं कि अच्छी संगति और बुरी संगति का प्रभाव व्यक्ति पर अवश्य पड़ता है।

व्याख्या — तुलसी कहते हैं कि अच्छी संगति से मनुष्य अच्छा बनता है और बुरी संगति से वह बुरा बन जाता है। वे उदाहरण देते हुए समझाते हैं कि हे लोगों! देखो, लोहा नावें में लगने से सबको पार उतारने वाला और सितार में लगने से मधुर संगीत सुनाकर सुख देने वाला बन जाता है, वही तलवार और तीर में लगते ही जीवों के प्राण का घातक हो जाता है।

विशेष — (1) संगति के प्रभाव की स्थिति व्यंजित है।

18. लखइ अघानो भूख ज्यों लखइ जीतिमें हारि।
तुलसी सुमति सराहिए मग पग धरइ बिचारि॥

शब्दार्थ — लखइ = देखता। **अघानो** = पेटभरा, तृप्त। **सुमति** = अच्छी मति।

प्रसंग — तुलसी की 'दोहावली' के इस दोहे में अभिमान की स्थिति की व्यंजना की गयी है, उसके प्रभाव को भी स्पष्ट किया गया है।

व्याख्या — तुलसी कहते हैं कि जो भूख में (अभाव में भी) अपने को तृप्त के समान समझता है और जीत में भी अपनी हार मानता है, इस प्रकार जो खूब विचार-विचार कर मार्ग पर पैर रखता है, वह बुद्धिमान ही सराहने योग्य है।

अर्थात् अभाव का अनुभव करने से ही कामना होती है और कामना ही पाप की जड़ है; अतएव जो सदा अपने को तृप्त, पूर्ण काम मानता है, उसके द्वारा पाप नहीं होते। इसी प्रकार अपनी विजय मानने से अभिमान बढ़ता है, जो पतन का हेतु होता है। अतएव जो पुरुष प्रत्येक क्रिया में और फल में अभिमान का त्याग कर विचारपूर्वक दोषों से बचता रहता है, वही बुद्धिमान है और वही प्रशंसनीय है।

विशेष — (1) अभाव में भी संतोष, कामना रहित वृत्ति, विजय में भी अभिमान न होना, सज्जन की ही विशेषता है। सच्चे साधु का ही गुण है।

(2) **अलंकार**—(1) अनुप्रास 'लखइ-लखइ' में, 'सुमति सराहिएँ' में।

(2) पुनरुक्ति प्रकाश 'लखइ-लखइ' में।

19. नगर नारी भोजन सचिव सखा अगार।
सरस परिहरें रंग रस निरस बिषाद बिकार॥

शब्दार्थ — नारी = स्त्री। **सचिव** = मंत्री। **अगार** = घर। **बिषाद** = शोक।

प्रसंग — तुलसी की 'दोहावली' के इस दोहे में व्यावहारिक नीति का उपदेश दिया गया है कि जिनकी सरसता नष्ट होने लगे उन्हें छोड़ना ही हितकारी है।

व्याख्या — तुलसी कहते हैं कि नगर, स्त्री, भोजन, मंत्री, सेवक, मित्र और घर-इनकी सरसता नष्ट होने से पहले ही इन्हें छोड़ देने में शोभा और आनंद है। नीरस होने पर इनका त्याग करने में तो शोक और अशान्ति ही होती है।

विशेष — (1) व्यावहारिक उपदेश की व्यंजना की गयी है।

(2) **अलंकार** — (1) अनुप्रास 'नगर नारी', 'सेवक-सखा', 'रंग-रस' में।

20. मनिमय दोहा दीप जहँ उर घर प्रकट प्रकास।
तहँ न मोह तम भय तमी कलि कज्जली बिलास॥

शब्दार्थ — मनिमय = मणि समान। **उर** = हृदय। **घर** = गृह।

प्रसंग — तुलसी अपनी 'दोहावली' का समापन करते हुए अपने प्रत्येक दोहे को मणि सदृश दीपक कहते हैं और उनके प्रभाव की व्यंजना भी स्पष्ट करते हैं।

व्याख्या — तुलसी कहते हैं कि जिसके हृदय रूपी घर में इन दोहों रूपी मणिमय दीपक का प्रकाश प्रकट होगा, वहाँ मोहरूपी अंधकार, भयरूपी रात्रि और कलिकालरूपी कालिमा का निलास नहीं हो सकता।

विशेष — (1) तुलसी ने दोहावली के दोहों की महिमा गायी है।

(2) **अलंकार** — (1) रुपक 'मतिमय दोहा दीप' में।

विनय के पद

(1) रामको गुलाम, नाम रामबोला राख्यौ राम,
काम यहै, नाम द्वै हौं कबहुँ कहत हौं।
रोटी लूगा नीके राखै, आगेहू की बेद भाखै,
भलो ह्वै है तेरो, ताते आनंद लहत हौं॥ 1॥
बांध्यौ हौं करम जड़ गरब गूढ़ निगड़,
सुनत दुसह हौं तौ साँसति सहत हौं।
आरत-अनाथ-नाथ, कौसलपाल, कृपाल,
लीन्हों छीन दीन देख्यो दुरति दहत हौं॥ 2॥
बूझ्यौ ज्योंही, कह्यो, मैं हूँ चेरो ह्वै हौ रावरो जू,